ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-1* Issue-9* October-2016
Innovation The Research Concept

कालिदास साहित्य में अवनद्ध वाद्य

लता
सहायक अध्यापिका
संगीत विभाग,
गवर्नमेंट गर्ल्स इण्टर कॉलेज
श्रीनगर, गढ़वाल

सारांश

गायन वादन तथा नृत्य इन तीनों ही कलाओं में वाद्य संगीत का अपना महत्व है। वाद्य, स्वर व लय के माध्यम से श्रोताओं को चिरकाल तक अद्‌भुत आनन्द का रसास्वादन करा सकता है।

गायन व नृत्य कला की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए वाद्य संगीत का सहारा लिया जाता है। या यूँ कहें कि गायन व नृत्य कला की पूर्णता के लिए वाद्य कला आवश्यक मानी गई है। परन्तु वाद्य अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए संगीत की अन्य कला की अपेक्षा नहीं रखता या कहा जा सकता है। वाद्य अपनी एकल प्रस्तुति से ही अपनी कला को परिपूर्ण बना लेता है।

मुख्य शब्द : अवनद्ध वाद्य, महाकवि कालिदास, संगीत, दुन्दुभि, भेरी, पुष्कर वाद्य, मर्दल

प्रस्तावना

वाद्य संगीत के प्रयोग से प्रायः यह ज्ञात हो जाता है। कि जो ध्वनि सुनाई दे रही है वह किस वाद्य कि तथा किस प्रयोग के लिए है। जैसे शंख, घण्टी, घण्टे, विजय घण्टा, आदि का प्रयोग मंदिरों में पूजा के अवसर पर होता है तथा शहनाई, ढोल, ताशा मंजीरे आदि का प्रयोग मागंलिक व विवाहादि कार्यो के लिए दुन्दुभि भेरी आदि का प्रयोग युद्धादि के संकेत के लिए होता है। वाद्यों का प्रयोग प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक अनेक स्थानों में शुभ माना जाता है।

वाद्यों की ध्वनि केवल सांगीतिक प्रयोगों में ही नहीं, वरन् यह मानव के क्रिया कलापों की ओर भी संकेत करती है। तथा मनुष्य के मानसिक स्थिति का भी ज्ञान कराती है। वाद्य संगीत का प्रयोग प्रायः सभी जातियों में होता है। अतः हम कह सकते हैं। कि

''वाद्य हमारे जीवन की संवेदनाओं से जुड़े हैं और उनकी ध्वनि जीवन के क्रिया–कलापों में सम्मलित होकर आनन्दानुभूति का रसास्वादन कराती है।

उद्‌देश्य

प्रस्तुत प्रपत्र में कालिदास साहित्य में उल्लिखित वाद्यों का वर्णन किया गया है।

अवनद्ध वाद्य

चर्म से मढ़े हुए वाद्य अवनद्ध वाद्यों के अन्तर्गत आते हैं –

''विरही यक्ष अपने संदेशवाहक के रूप में मेघ को अपनी प्रिया यक्षणी के पास अलकापुरी जाने के सन्दर्भ में उसे मार्ग का वर्णन करते हुए कहता है। कि हे मेघ! जब तुम उज्जनियी के महाकाल के मन्दिर में साँझ होने से पहले जाआगे तो वहाँ तब तक ठहरना जब तक की सूर्य भली प्रकार तुम्हारी आँखों से ओझल न हो जाए। भगवान शिव की सन्ध्या–पूजा के समय तुम अपने मधुर गम्भीर गर्जन से पटह का स्वर करना, तुम्हें पूर्ण फल प्राप्त होगा।''[1]

सध्याबलि पटहतां

प्रस्तुत श्लोक में यह पद स्पष्ट करता हैं कि संध्याकाल के समय पटह वाद्य का नियमित रूप से वादन उस समय प्रचलित रहा होगा।

मामन्द्राणां गर्जितानाम्–अर्थात् पटह वाद्य का गम्भीर गर्जन मेघ सदृश है।

महाकवि कालिदास रचित पद पूर्ण संगीतात्मक संकेत प्रकट करता है पटह वाद्य का वादन संध्या पूजा के समय विशेष महत्व रखता है। जिसके लिए यक्ष मेघ को उसमें भाग लेने का परामर्श देता है।

जन्मोत्सव के शुभ अवसर पर पटह वादन का उल्लेख कुमार सम्भव इस प्रकार किया है।

''भगवान शिव का आदेश प्राप्त कर सभी गणों ने गंभीर ध्वनि वाले पटह वाद्य का वादन किया, जिसकी ध्वनि दशों–दिशाओं में फैलती हुई धरती तक पहुँची। और वहाँ से प्रतिध्वनित होने पर उसकी धमक मानो यह बतलाने लगी कि दिग्पालों और देवताओं के लोक के समान, यहाँ भी पुत्र–जन्मोत्सव

मनाया जा रहा है।[2] महाकवि कालिदास ने निम्न पद से यह स्पष्टकिया है। कि जन्मोत्सव के शुभ अवसर में पटह वाद्य का वादन अत्यधिक प्रिय ही नही वरन् यह महोत्सवों में हर्षोल्लास का प्रतीक भी है। अतः कवि कहता है कि पटह वाद्य का प्रयोग धरती में ही नहीं वरन् देवगण भी जन्मोत्सव या मांगलिक प्रसंगों में इसका प्रयोग करते हैं।

जहाँ एक ओर पटह वादन का प्रयोग जन्मोत्सव तथा अन्य मांगालिक कार्यो में किया है। वही इसके धीरगम्भीर स्वर का प्रयोग युद्धक्षेत्र में भी प्राप्त होता है।

''तारकासुर से युद्ध के लिए कार्तिकेय संचालित देवसेना में जब पटह वाद्य की गम्भीर ध्वनि आकाश–मण्डल में व्यापत हुई तो पटह की इस गम्भीर ध्वनि की गूँज सुनकर दैत्यों की राजलक्ष्मी कम्पित हो उठी तथा सेना के चलने से उड़ी धूल तथा समुद्र मंथन के समय समुद्र की गड़गड़ाहट से भी अधिक ध्वनि वाले, तथा दैत्यों की स्त्रियों का गर्भपात करा देने वाली, यह धीर गम्भीर पटह ध्वनि की धमक सुनकर ऐसा प्रतीत हो रहा था। मानो आकाश जोर से रो उठा हो।''[3]

महाकवि कालिदास ने इस प्रसंग में पटह वाद्य के गम्भीर गर्जन की विशालता का वर्णन किया हैं साथ ही पटह वाद्य की धमक से शत्रुदल का भयभीत होना यह स्पष्ट करता है, कि जोश तथा उत्साहित किए जाने के लिए पटह वाद्य का प्रयोग किया जाता था इसलिए देव सेना में पटह वाद्य बजने पर शत्रुदल में भय व्याप्त होना स्वाभाविक है।

पटह वाद्य का धीर गम्भीर नाद न केवल देवताओं के द्वारा होता है वरन् दैत्य सेना द्वारा भी इस वाद्य का प्रयोग कुमार सम्भव में मिलता है–

''जब देवताओं से लड़ने के लिए ताकरसुर की सेना युद्ध के लिए तैयार हुई। तो उस अवसर पर दैत्य सेना ने भी गम्भीर पटह नाद किया अर्थात् दैत्य सेना में बजने वाले गम्भीर व भंयकर पटहों की ध्वनि इतनी समर्थ थी कि वह पर्वतों की कन्दराओं को फोड़ सकती थी ऐसा गम्भीर नाद सुनकर समुद्र भी हिलोरें लेकर अपने तट से ऊपर उठ गया और आकाश गंगा से सहसा बाढ़ आ गई।''[4]

इन प्रसंगों से स्वतः ही पटह ही धीर गम्भीर ध्वनि का अनुमान लगाया जा सकता है। मांगलिक तथा युद्ध अवसरों मे पटह वाद्य का वादन या चलन महाकवि ने स्पष्ट तो किया है। साथ ही उनकी कृतियों से हमें समय के प्रचलित संगीत वाद्यों का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

पुष्कर वाद्य

मेघदूत में महाकवि ने पुष्कर वाद्य का उल्लेख अलकापुरी के वर्णन–प्रसंग में किया है।

''हे मेघ! जब तुम अलकापुरी पहुँचोगे तो देखोगे कि वहाँ के यक्ष अपनी स्त्रियों को साथ लेकर अपने उन भवनों की छतों पर जा बैठते है जहाँ उनकी पान गोष्ठी चल रही है। वे छतें धवल निर्मित होगी तथा उन पर तारों की छाया ऐसी जान पड़ती है। मानों सुन्दर फूल बिछे हों, वहाँ बैठकर वे लोग कल्पवृक्ष से उत्पन्न **'रतिफल'** नामक मदिरा का पान कर रहें होगें तुम्हारी गम्भीर ध्वनि के समान मन्द–मन्द गति से पुष्कर वाद्य का वादन हो रहा होगा जो इस वातावरण को और भी मनोहरी बना रहा होगा।[5]

महाकवि कालिदास ने समृद्ध यक्ष समुदाय की गोष्ठियों में मदिरा पान के साथ वाद्य संगीत का वर्णन किया है। यहाँ यह कहना उचित है कि मानवीय संस्कारों में रसात्मक वृद्धि करने के लिए संगीत का का प्रयोग प्राचीन काल से ही चला आ रहा है।

अतः कलाप्रिय यक्षों की गोष्ठियों में मदिरा–सेवन के साथ पुष्कर वाद्य के नाद का संगीत चल रहा है। प्रस्तुत पद 'शनकैः' से यह प्रतीत हो रहा है कि वादन का कार्य धीरे–धीरे तथा मन्द्रस्वरों में हो रहा है। जो उन गोष्ठियों में मनोहर वातावरण प्रस्तुत कर रहा है। प्राचीन काल से ही मानवीय क्रिया–कलापों में वृद्धि तथा उमंग (हर्षोल्लास) का वातावरण प्रस्तुत करने के लिए संगीत का प्रयोग होता आया है।

संगीत तत्वों के महाध्यम से महाकवि कालिदास ने अलका की समृद्धिता का सुन्दर वर्णन किया है। पुष्कर वाद्य का मन्दगति में वादन श्रृंगारिक क्रिया–कलापों में सहायक तो है ही, साथ ही यह अद्वितीय आनन्द का रसास्वादन भी कराता है।

''महाराज अग्निवर्ण पुष्कर वादन में निपुण थे। जब राजा अग्निवर्ण नर्तकियों के नृत्य के समय स्वयं पुष्कर वादन करते थे। तो नृत्यकला में निपुण होने पर भी नर्तकियाँ अग्निवर्ण के पुष्कर वादन को देख अपनी भाव–भंगिमाओं को भूल जाती थी। क्योंकि पुष्कर वादन करते समय अग्निवर्ण के गले में स्थित माला व हाथों के वलय हिलोरें लेते थे।

उनकी इस अनुपम मुद्रा को देख नर्तकियाँ अपने गुरुओं की उपस्थिति में ही नृत्य में अनेक त्रुटियाँ कर जाती थी। तथा अपनी इस भूल के लिए आचार्यो के समक्ष लजाती थी। [6]

महाराजा अग्निवर्ण की कलाप्रियता का वर्णन करते हुए कालिदास कहते हैं संगीत कला में न केवल गायक वादक व नर्तक ही रूचि नही रखते थे। वरन् राजा महाराजाओं को भी इस कला से विशेष लगाव था।

राजा अग्निवर्ण पुष्कर वादन में उत्कृष्ट स्थान रखते थे। राजसभा में जब नृत्यांगनायें राजा अग्निवर्ण को देखकर अपने नृत्य का स्खलन कर जाती है। लेकिन इसके विपरीत राजा अग्निवर्ण अपने वाद्य कौशल का पूर्ण परिचय देते हैं तथा अपने वाद्य विषयक ज्ञान व निपुणता का स्पष्टीकरण भी कहते हैं।

प्रस्तुत पद में पुष्कर वाद्य के साथ नृत्य कला का प्रयोग महाकवि ने किया है। तथा साथ ही राजा भी संगीत कलाओं में विशेष अभिरूचि के साथ संगीत आदि कलाओं का ज्ञान तथा संगीतशालाओं का विशेष ध्यान रखते थे। जसे उस समय में प्रचलित संगीत शैलियों को दर्शाता है।

मार्जना

महाकवि कालिदास ने भी मालविकाग्निमित्र में **मायूरी मार्जना** का वर्णन **पुष्कर वाद्य** के अन्तर्गत किया है। मालविका के नृत्य के प्रारम्भ होने से पूर्व संगीत के स्वरों की संगति के साथ **मायूरी मार्जना युक्त पुष्कर वाद्य** का प्रारम्भ होता है।[7]

''मार्जना प्राचीन संगीत की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। मार्जना के तीन प्रकार हैं मायूरी, अर्धमायूरी, तथा कार्मारवी। मायूरी मार्जना का सम्बन्ध माध्यम ग्राम से है। अर्धमायूरी का षड्ज से है कर्मारवी का सम्बन्ध ग्रामसाधारण से है–

मायूरी मध्यमग्रामेऽप्यर्था षड्जे तथैव च।
कार्मारवी चैव कर्तव्या साधारणसमाश्रया।।

मार्जनाओं की प्रक्रिया विशेषतः त्रिपुष्कर वाद्य के सम्बन्ध में निर्दिष्ट हैं जहाँ विभिन्न मुखों पर मृत्तिकालेप के द्वारा विभिन्न स्वरों की स्थापना की जाती है। ''मायूरी'' में वामस्थ पुष्कर पर गान्धार, दक्षिण पुष्कर पर षड्ज तथा उर्ध्वग पुष्कर पर मध्यम स्थापित किया जाता है। 'अर्थमायूरी' में वाम पुष्कर पर षड्ज, दक्षिण पर ऋृषभ तथा ऊर्ध्वग पर धैवत स्थापित किया जाता है। ''कार्मारवी'' में वाम पुष्कर पर ऋृषभ दक्षिण पुष्कर पर षड्ज तथा ऊर्ध्वग पर पंचम स्थापित किया जाता है।[8]

सबसे प्रमुख बात यह स्पष्ट है कि प्राचीन पुष्कर वाद्य तीन मुखों वाले होते थे। मायूरी मार्जना पद विशेष सागीतिक महत्व का है।

महाकवि द्वारा उसका प्रयोग यह स्पष्ट करता है। कि महाकवि वाद्य संगीत के तथा संगीत विधाओं के सूक्ष्मतम ज्ञाता थे नृत्य के प्रारम्भ होने से पहले गायक व वादक का स्वर साधन आवश्यक होता है। या कह सकते हैं कि गायन वादन तथा नृत्य के प्रारम्भ होने से पूर्व तीनों विधाओं का आपस में स्वर–संवाद होना या स्वर में मिला होना आवश्यक होता है।

अतः मालविका के नृत्य से पूर्व संगीत के स्वर तथा पुष्कर वाद्य के अतिरिक्त अन्य वाद्य के वादन की संगति भी हो रही है।

महाकवि कालिदास द्वारा रचित यह पद संगीत शास्त्रीय दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

''अनुरसितस्य पुष्करस्य'' पुष्कर वाद्य के पूर्व अन्य वाद्यों का वादन भी नाट्यशाला में हो रहा है। जिसके बाद मालविका के नृत्य का अभिनय होता है।

''मध्यमस्वरोत्था'' पदानुसार यह मायूरी मार्जना मध्यम स्वर में स्थापित है। मायूरी मार्जना का अर्थ **''मध्यम ग्राम''** है। इसीलिए महाकवि ने **मध्यमस्वरोत्था** कहा है।

जीतूस्तनितविशकिंभरुद्ग्रीवैः मयूरै

इस मार्जना युक्त पुष्कर ध्वनि को सुन मयूर भी हर्षित हो रहे है। मार्जना युक्त ध्वनि मेघ ध्वनि के सदृशः है जिससे मयूरों को बादलों के गर्जन का आभास हो रहा है। अतः वे गरदन उठाकर आकाश की ओर देख रहे हैं।

मृदंग

कालिदास की कृतियों में मृदंग वाद्य का वर्णन अन्य वाद्यों की तरह अनेक स्थानों में प्राप्त होता है। महाकवि कालिदास ने इन वाद्यों की विशेषताओं तथा इनके उपयोग के विषय में यत्र–तत्र वर्णन किया है।

पुष्कर वाद्य के रूप में मृदंग का उल्लेख हमें कालिदास के ग्रन्थों में प्राप्त होता है। मृत्तिका से निर्मित होने के कारण मृदंग नाम पड़ा महाकवि ने इन वाद्यों की विशेषता एवं इनके उपयोग के विषय में यत्र–तत्र वर्णित की है।

रघुवंश में राजा अग्निवर्ण के संगीत विषयक ज्ञान का उल्लेख करते हुए कालिदास कहते हैं कि राजा अग्नि वर्ण अपने रंगभवन में संगीत प्रिय कामिनियों के साथ निरन्तर विहार करने लगा तथा इन भवनों में प्रत्येक दिन ऐश्वर्यसम्पन्न उत्सव मनाये जाने लगे, तथा पहले दिन का उत्सव दूसरे दिन के उत्सव के सामने, फीका लगता था। इन रंगभवनों में सतत मृगंग वादन, होता रहता था।[9]

मृदंग वाद्य नृत्य गीत की संगत में बहुतायत से प्रयुक्त किया जाता था। संगीत सम्बन्धी कार्यक्रम के स्थल, रंगभवन में, प्रारंभ में मृदंग की ध्वनि की जाती थी जिससे कार्यक्रम की सूचना मिलती थी। निरन्तर हो रहे उत्सवों में मृदंग वादन का उल्लेख राजा अग्निवर्ण की संगीतप्रियता को प्रदर्शित करता है तथा साथ ही यह भी ध्वनित होता है कि उत्सवों में मृदंग वादन का प्रयोग होता था।

मृदंग वादन का ध्यान रखते हुए यह कहना उचित होगा कि इन उत्सवों में संगीत एक अनिवार्य अंग था तथा वाद्य कला के साथ उत्सवों में नृत्य, गीत का समावेश भी रहता होगा, ''क्योंकि अनेक स्थानों में राजा अग्नि वर्ण के संगीताभिरुचि के विषय में कालिदास ने स्पष्ट किया है।[10]

''आकाश मार्ग में जब श्री राम सीता को साथ लेकर लंका से अयोध्या की ओर लौटते समय मुनि शातकर्णी का वर्णन करते हुए, राम सीता से कहते है कि यह जो संगीत मय मृदंग ध्वनि तुम्हें सुनाई दे रही है।

यह जल में अन्तर्हित उन्हीं शातकर्णी मुनि के भवन का है। वहीं के मृदंग की ध्वनि आकाश में होती हुई इस पुष्पक विमानकी चन्द्रशाला (शिरो भाग) में टकराकर प्रतिध्वनित हो रही है।''[11]

''प्रयुक्त संगीत मृदंग घोष'' अर्थात् गीत व नृत्यं के साथ मृदंग वादन का उल्लेख निम्न पद में दृष्टिगोचर होता है। **''संगीत''** पद से तीनों ही कलाओं का विवेचित किया जाता है परन्तु महाकवि ने मृदंग वाद्य का पृथक वर्णन किया है।

अतः यह हो सकता है कि संगीतानुष्ठान में अन्य वाद्यों की अपेक्षा मृदंग वादन विशेष रूप से हो रहा हो। या गीत व नृत्य के साथ मृदंग वाद्य का वादन उच्च ध्वनि के साथ हो रहा था इसलिए महाकवि ने मृदंग का पृथक प्रयोग किया है।

''मृदंग ध्वनि का वर्णन कालिदास की कृतियों में अनेक स्थानों में वर्णित है। राजा के शयन गृह में जब अयोध्या की नगर देवी का प्रवेश होता है तो वह अयोध्या की दशा का वर्णन करते हुए कहती है कि अयोध्या की जिन बावलियों का जल पहले जल क्रीड़ा करने वाली सुन्दर स्त्रियों के हाथ के थपेड़ों से मृदंग के समान गम्भीर शब्द किया करता था। वह आजकल जंगली भैसों के सीगों की चोटों से कान फोड़ डालता है। मृदंग ध्वनि के अभाव में अर्थात् मृदंग के न बजने के कारण मोरों ने नाचना भी बन्द कर दिया है।[12]

महाकवि कालिदास ने इन पदों मे मृदंग वादन का सुन्दर निरूपण किया है महाकवि कालदिास ने वाद्यों का सुन्दर प्रस्तुतिकरण कर अपने साहित्य लेख को,

संगीतादि अंलकरणों से सजाकर एक सुन्दरतम स्वरूप को अभिव्यक्त किया है।

महाकवि कालिदास के अयोध्या नगरी की दशा का वर्णन करते हुए यह उल्लखित/ध्वनित किया है कि अयोध्यानगरी में सतत् ही संगीतादि ध्वनियों का निस्पन्दन होता था, क्योंकि जल क्रीड़ा करते समय जिन स्त्रियों के हाथों में मृदंग के समान ध्वनि उत्पन्न होती थी, वह यह स्पष्ट करता है कि अयोध्या की नगर स्त्रियाँ संगीत आदि कलाओं का ज्ञान रखती थी, तथा उन कलाओं में निपुण भी होती थी।

मेघ ध्वनि से साम्य रखते हुए मृदंग की धीर गम्भीर ध्वनि को सुनकर जो मोर नाच उठते थे, वही मयूर मृदंग ध्वनि के अभाव में नाचना भूल गये हैं। या यूँ कहें कि अयोध्या की समृद्धि को नष्ट होते हुए देख अब वे पालतू मयूर जंगली मयूर हो गये है। और संगीत ध्वनि के निरन्तर अभाव में मयूरों ने नृत्य करना छोड़ दिया है।

महाकवि कालिदास ने मृदंग वादन की मनोहारिता का वर्णन रघुवंश में इस प्रकार किया है–

''संगीतादि कलाओं के अभाव में शून्य होती अयोध्या का वर्णन महाकवि कालिदास ने किया है वहीं दूसरी ओर अयोध्या की समृद्धि के प्रसंग में मनोहादि मृदंग वादन का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि जलक्रीड़ा में मग्न ये विलासिनी नारियाँ प्रसन्नता से गीत आ रही है और साथ ही हथेलियों से जल को ठोंकते हुए मृदंग के समान ध्वनि उत्पन्न कर रही हैं।

इस संगीत प्रिय मधुर ध्वनि को सुनकर मयूर भी मधुर ध्वनि करते हुए अपने पंखों को ऊपर उठाकर नृत्य के लिए उद्यत होते हैं मानों वह विलासिनियों के वारिमृरंग वादन एवं गायन का अभिन्नदन कर रहे हो।[13]

इस पद में अनेक पद संगीतात्मक है। जिसमें **''वारि मृदंग वाद्य''** की व्याख्या इस प्रकार की गई है।

''वार्येव मृदंगस्तद्वाद्यं वारिमृदंगवाद्यम्''[14] अर्थात् जल रूपी मृदंग

''कामसूत्र में उल्लेख है कि जलकणों द्वारा इस प्रकार आस्फालन करना कि उसमें मृदंग–सदृश ध्वनि उद्भुत हो **''उदक वाद्य''** नामक कला है।''[15]

''उत्कलापैः'' पद मयूर के हर्षोल्लास को प्रकट करते हैं इसकी व्याख्या चरित्रवर्द्धन इस प्रकार करते हैं।

धाराधरनादानुकारि प्रमदा करताडितजलारावश्रवणसमन्तर हर्षवशादुद्गतः कलापौ यैः।

अर्थात् जलधर मेघ की ध्वनि के समान प्रमदाओं के करों से उत्पन्न मनोहर जलरव के सुनते ही हर्षोल्लासवश जिनके पंख ऊपर उठ गए हों, ऐसे मयूर।

इस पद की व्याख्या से स्पष्ट है। कि तटवर्ती मयूर अपने पंखों को ऊपर उठाकर हर्षोल्लास ने नृत्य करने के लिए इसलिए उद्यत होते हैं कि जल क्रीड़ारत प्रमदाओं के करकंकण–ध्वनिमिश्रित वारिमृदंगनाद के मेघगर्जन के समान होने के कारण उन्हें मेघ के आगमन की प्रतीति होती है।[16]

मर्दल

महाकवि कालिदास ने **'मर्दल'** का प्रयोग ऋतुसंहार के दो पदों में इस प्रकार किया है। वर्षा ऋतु के वर्णन में महाकवि ने बादलों की गरज को मर्दल ध्वनि के समान माना है। महाकवि ने वर्षा ऋतु की प्रथम पंक्ति में ही बादलों की गड़गड़ाहट को मर्दल ध्वनि के सदृश माना है।

मर्दल ध्वनि के समान ही गड़गड़हाट से भरे हुए ये मेघ परदेश में रहने वाले लोगों के मन को क्षुब्ध बना देते हैं।[17]

'मर्दल' मृदंग का ही एक प्रकार है। परन्तु महाकवि ने इसका प्रयोग कर यह स्पष्ट किया है। कि उस समय मृदंग के समान ही **'मर्दल'** वाद्य का प्रयोग होता था। या मृदंग को मर्दल नाम से भी उल्लेखित करते हो। परन्तु यह कहना उचित होगा। कि मर्दल वाद्य की ध्वनि भी अन्य वाद्यों की भाँति धीर, गम्भीर रही होगी।

दुन्दुभि

अवनद्ध वाद्य में सबसे प्राचीन वाद्य व प्रचलित वाद्य दुन्दुभि है। संगीत रत्नाकर में दुन्दुभि को कांस्य धातु का माना है। इसके मुख को चमड़े से मढ़ा जाता था। इसके चारों ओर चमड़े की बद्धियाँ होती थी। जिन्हें कस दिया जाता था। चर्म निर्मित कोण से ही 'दुन्दुभि' का वादन किया जाता था, इसका स्वर अत्युच्च तथा मेघसदृश गम्भीर होता था। इसका वादन देवालयों में मंगल तथा विजयावसरों पर किया जाता था।

'अवनद्ध वाद्यों की प्राचीनता में दुन्दुभि वाद्य का नाम अग्रणी है। महाकवि कालिदास भला इस वाद्य से कैसे अछूत रह सकते है। ''उन्होंने भी रघुवंश में श्रीराम के जन्मोत्सव पर के वादन में सर्वप्रथम देवताओं ने दुन्दुभि वाद्य का वादन किया। उसके बाद ही अन्य वाद्यों का वादन प्रारम्भ हुआ''।[18]

कुमार कार्तिकेय के जन्मोत्सव में सभी शंख ध्वनि के साथ–साथ दुन्दुभियों की मधुर ध्वनि भी सभी घरों में बजने लगी तथा देवगण भी आकाश में स्थित होकर फूल बरसाने लगे।[19]

जन्मोत्सव के शुभ अवसर में दुन्दुभि का प्रयोग इस बात का संकेत देता हैं कि मंगल कार्यो में भी दुन्दुभि का प्रयोग शंख की भाँति हुआ है। अर्थात् हम कह सकते है। कि इसकी धीरे गम्भीर ध्वनि चारों दिशाओं में गूँजकर इस बात की सूचना कर रहा है कि श्रीराम व कुमार कार्तिकेय का जन्म हो गया है।

गम्भीरशंख ध्वनि मिश्रमु **चुच्चैर्गृहोभ्द्रवा दुन्दुभयः** से स्पष्ट है कि दुन्दुभि वाद्य शंख ध्वनि की मिश्रित आवाज एक साथ उन घरों से निकल रही है दुन्दुभि वाद्य की ध्वनि ऊँचे स्वर में हो रही है। जिसके लिए महाकवि ने उच्चैः शब्द का प्रयोग किया है यह अत्याधिक हर्षोल्लास का प्रमाण प्रस्तुत कर रहा है तथा वाद्य की लोकप्रियता को भी उल्लेखित कर रहा है।

''दुन्दुभि वाद्य का वैदिक काल से ही अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है दुन्दुभि केवल मांगलिक अवसरों में ही नहीं वरन् वीरों को उत्साहित करने के लिए दुन्दुभि का प्रयोग होता था, इतना ही नहीं विजय प्राप्ति हेतु स्वयं दुन्दुभि की भी स्तुति की गई है। इसे शक्ति का प्रतीक माना गया है। यथा ''ऐ दुन्दुभिः तू कल्याणकारी संग्राम विजित करने वाली है तू शत्रुधन को अपने अधीन करने नाच, तू बलवान प्राणियों के समान आचरण कर तू, वनस्पतियों से निर्मित है एवं तीव्र ध्वनि करने वाली है। तू चारों ओर ऐसा शब्द करती हुई शत्रु का दमन कर और सिंह के समान जीतने की इच्छा करके चारों ओर से गजरती है।[20]

भेरी

भेरी एक महत्वपूर्ण वाद्य है जिसका प्रयोग रणवाद्य के रूप में होता हैं भेरी की ध्वनि तीव्र होती है यही कारण था कि यह रणवाद्यों के अन्तर्गत रखी जाती है। राजा के प्रयाण इत्यादि के अवसर पर इसका अन्य वाद्यों के साथ वादन होता था। ''ध्वनि की तीव्रता का संकेत इस तत्व से मिलता है कि उक्त जातक में भेरी वादक इसके वादन से चोरों को भागने का कार्य करता था। यह वादन दण्ड के द्वारा किया जाता था।[21]

महाकवि कालिदास ने भेरी वादन का प्रयोग कुमार सम्भव में तारकासुर के विरूद्ध युद्ध में देवसेना के प्रयाण के अवसर पर भेरी वादन का उल्लेख किया है–

कि भेरी वाद्य की गम्भीर ध्वनि तथा बड़े–बड़े रथों के पहियों की घड़घड़ाहट गुफाओं से टकराकर वातावरण को दुगनी मात्रा में कम्पित कर रहे है। किन्तु फिर भी वहाँ के सिंह ज्यों कि त्यों बैठे रहे और उन मृगराजों ने यह सिद्ध कर दिया कि हम समचुम के मृग है।[22]

प्राचीन काल से भेरी वाद्य का प्रयोग रणवाद्य के रूप में होता आया है। इस परिपेक्ष्य में महाकवि कालिदास ने भी इसका प्रयोग युद्धक्षेत्र के लिए किया तथा साथ ही भेरी वाद्य की गम्भीर गर्जन का आभास भी उन्होंने करवाया है।

महाकवि ने **''गम्भीर भेरि ध्वनितैं''** के साथ **''भंयकरै''** पद का प्रयोग कर स्पष्ट किया है ''देवसेना में विद्यमान भेरी वाद्य की ध्वनि अत्यन्त भंयकर है और जो शत्रुदल को भयभीत करने में समर्थ है। तथा साथ ही महाकवि ने **महागुहान्तप्रतिनाद मेदुरैः** पद का प्रयोग स्पष्ट करता है कि सुमेरू पर्वत की बड़ी–बड़ी गुफओं से प्रतिध्वनित होकर भेरी वाद्य की ध्वनि और भी अधिक भयंकर हो गई है। जिससे शत्रुओं की सेना में भय का संचार होना स्वाभाविक है।

महाकवि ने 'कुमार संभव' के इसी सर्ग में भी भेरी वाद्य की धीर गम्भीर ध्वनि का उल्लेख इस प्रकार किया है कि–

''बड़े–बड़े पहाड़ों को फाड़ डालने वाली और समुद्र में हलचल मचा देने वाली यह भेरी वाद्य की आवाज जब उठकर आकाश और दिशाओं में गूँजी तो उसकी और भी भयानक ध्वनि सुनकर सारा संसार घबड़ा उठा''।[23]

जो ध्वनि पर्वतों व चट्टानों को फोड़ने तथा समुद्र में हलचल उत्पन्न करने में समर्थ हो और दशों–दिशाओं को प्रतिध्वनित कर सारे संसार को भयभीत कर दे। तो यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है। कि भेरी वाद्य की ध्वनि को सुनकर भला कौन भयभीत नहीं होगा।

महाकवि ने तारकासुर संग्राम में भी भेरी वाद्य के गम्भीर गर्जन की महत्वा को बड़े अलंकारिक ढंग से वर्णित किया है–

''युद्ध स्थल में विद्यमान भेरी वाद्य ध्वनि ऐसी ही लग रही है मानो आकाश रूपी नायक धूल से भरी हुई अपनी दिशा रूपी रजस्वला नायिका पर सैनिकों का इतना बड़ा धावादेखकर घोर ईर्ष्या से गरज उठा हो।''[24]

चारों दिशाओं में फैलकर भेरी वाद्य की ध्वनि इतनी भंयकर हो गई है। कि आसमान को भी इसकी गम्भीर गर्जन का आभास हो गया है। महाकवि कालिदास ने भेरी वाद्य का उल्लेख तीनों बार युद्ध प्रसंगों में किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *रघुवंशम् 15/64,65,66 पृ0, 146*
2. *अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5/7, 8 पृ0, 75 (का0ग्र0) आचार्य सीताराम चतुर्वेदी*
3. *रघुवंश 6/8 पृ0, 48 (का0ग्र0) आचार्य सीता राम चतुर्वेदी।।*
4. *कुमार संभव, 7/48 पृ0, 240 (का0ग्र0), आचार्य सीताराम चतुर्वेदी*
5. *कुमारसंभव 2/34 पृ0, 193 (का0 ग्र0)*
6. *कुमार सम्भव, 11/30, 36 पृ0, 274, 275,*
7. *2/4 पृ0, 259 मालविकाग्निमित्रम्, (का0ग्र0), आचार्य सीताराम चतुर्वेदी,*
8. *1/8, पृ0, 186 कुमारसंभव, (का0ग्र0) आचार्य सीताराम चतुर्वेदी*
9. *8/85 पृ0, 257 कुमारसंभव, (का0ग्र0) आचार्य सीताराम चतुर्वेदी,*
10. *2/26 पृ0, 336, मेघदूत, (का0ग्र0) आचार्य सीताराम चतुर्वेदी,*
11. *मेघदूत, 2/10, पृ0, 333, (का0ग्र0), आचार्य सीताराम चतुर्वेदी,*
12. *1/8 कुमार संभव, पृ0, 186, (का0ग्र0) आचार्य सीताराम चतुर्वेदी,*
13. *कुमार संभव 7/91, पृ0, 245, (का0ग्र0), आचार्य सीताराम चतुर्वेदी,*
14. *अभिज्ञानशाकुन्तल, (का0ग्र0) आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, पृ0, 5*
15. *कुमार संभव, 2/12, पृ0, 194 (का0ग्र0), आचार्य सीताराम चतुर्वेदी,*
16. *10/21, पृ0 92, रघुवंश, (का0ग्र0)*
17. *7/48, पृ0, 240, कुमार संभव, (का0ग्र0) आचार्य सीताराम चतुर्वेदी,*
18. *9/32, पृ0, 262, कुमार संभव, (का0ग्र0), आचार्य सीताराम चतुर्वेदी,*
19. *8/85, पृ0, 257, कुमार संभव, (का0ग्र0) आचार्य, सीताराम चतुर्वेदी,*
20. *8/64, रघुवंश, पृ0, 75, (का0ग्र0) आचार्य सीताराम चतुर्वेदी,*
21. *प्राचीन भारत में संगीत, डॉ0 धर्मवती श्रीवास्तव, पृ0, 35, 36,*
22. *14/27 पृ0, 293 कुमार संभव,*
23. *कुमार संभव 14/45 पृ0, 295 (का0ग्र0 आचार्य सीताराम चतुर्वेदी)*
24. *कुमारसंभव 14/49 पृ0, 295 (का0ग्र0 आचार्य सीता राम चतुर्वेदी)*